# अध्याय-८

**मानव-जन्म का महत्त्व, श्रीसाईबाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा-शुश्रुषा, श्रीसाईबाबा का शयनकक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।**

जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है, अब श्री हेमाडपन्त मानव जन्म की महत्ता को विस्तृत रूप में समझाते हैं। श्रीसाईबाबा किस प्रकार भिक्षा उपार्जन करते थे, बायजाबाई उनकी किस प्रकार सेवा-शुश्रुषा करती थीं, वे मस्जिद में तात्या कोते और म्हाल्सापति के साथ किस प्रकार शयन करते तथा खुशालचन्द पर उनका कैसा स्नेह था, इसका आगे वर्णन किया जाएगा।

## मानव जन्म का महत्त्व

इस विचित्र संसार में ईश्वर ने लाखों प्राणियों (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनियों) को उत्पन्न किया है (जिनमें देव, दानव, गन्धर्व, जीवजन्तु और मनुष्य आदि सम्मिलित हैं), जो स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में निवास करते और भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं। इन प्राणियों में **जिनका पुण्य प्रबल है, वे स्वर्ग में निवास करते और अपने सत्कृत्यों का फल भोगते हैं। पुण्य के क्षीण होते ही वे फिर निम्न स्तर में आ जाते हैं; और वे प्राणी, जिन्होंने पाप या दुष्कर्म किये हैं, नरक को जाते हैं और अपने कुकर्मों का फल भोगते हैं। जब उनके पाप और पुण्यों का समन्वय हो जाता है, तब उन्हें मानव-जन्म और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। जब पाप और पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब वे मुक्त हो जाते हैं।** अपने कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार ही आत्माएँ जन्म लेतीं या काया-प्रवेश करती हैं।

## मनुष्य शरीर अनमोल

यह सत्य है कि समस्त प्राणियों में चार बातें एक समान हैं -

आहार, निद्रा, भय और मैथुन। मानव प्राणी को ज्ञान एक विशेष देन है, जिसकी सहायता से ही वह ईश्वर-दर्शन कर सकता है, जो अन्य किसी योनि में सम्भव नहीं। यही कारण है कि देवता भी मानव योनि से ईर्ष्या करते हैं तथा पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण करने हेतु सदैव लालायित रहते हैं, जिससे उन्हें अंत में मुक्ति प्राप्त हो।

किसी-किसी का ऐसा भी मत है कि मानव-शरीर अति दोषयुक्त है। यह कृमि, मज्जा और कफ से परिपूर्ण, क्षण-भंगुर, रोग-ग्रस्त तथा नश्वर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कथन अंशतः सत्य है। परन्तु इतना दोषपूर्ण होते हुए भी मानव-शरीर का मूल्य अधिक है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी योनि में संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ही तो ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर और विश्व परिवर्त्तनशील है; और इस प्रकार धारणा कर इन्द्रिय-जन्य विषयों को तिलांजलि देकर तथा सत्-असत् का विवेक कर ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। इसलिये यदि हम शरीर को तुच्छ और अपवित्र समझ कर उसकी उपेक्षा करें तो हम ईश्वर दर्शन के अवसर से वंचित रह जाएँगे। यदि हम उसे मूल्यवान समझ कर उसका मोह करेंगे तो हम इन्द्रिय-सुखों की ओर प्रवृत्त हो जाएँगे और तब हमारा पतन भी सुनिश्चित ही है।

इसलिये उचित मार्ग, जिसका अवलम्बन करना चाहिए, यह है कि न तो देह की उपेक्षा करो और न ही उसमें आसक्ति रखो। केवल इतना ही ध्यान रहे कि किसी घुड़सवार का अपनी यात्रा में अपने घोड़े पर तब तक ही मोह रहता है, जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर लौट न आए।

इसलिये ईश्वर-दर्शन या आत्मसाक्षात्कार के निमित्त शरीर को सदा ही लगाये रखना चाहिए, जो जीवन का मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात् भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ; कारण यह है कि कोई भी प्राणी उसकी अलौकिक रचना और सृष्टि को समझने में समर्थ न हो सका और इसी कारण उसने एक विशेष प्राणी अर्थात् मानव जाति की उत्पत्ति की, और उसे ज्ञान की विशेष सुविधा प्रदान की। जब ईश्वर ने देखा कि मानव उसकी

लीला, अद्‌भुत रचनाओं तथा ज्ञान को समझने के योग्य है, तब उन्हें अति हर्ष एवं सन्तोष हुआ। (भागवत स्कंध ११-९-२८ के अनुसार)। इसलिये मानव जन्म प्राप्त होना बड़े सौभाग्य का सूचक है। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेना तो परम सौभाग्य का लक्षण है, परन्तु श्री साई-चरणाम्बुजों में प्रीति और उनकी शरणागति प्राप्त होना इन सभी में अति श्रेष्ठ है।

**मानव का प्रयत्न**

इस संसार में मानव-जन्म अति दुर्लभ है। हर मनुष्य की मृत्यु तो निश्चित ही है और वह किसी भी क्षण उसका आलिंगन कर सकती है। ऐसी ही धारणा कर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति में सदैव तत्पर रहना चाहिए। जिस प्रकार खोये हुये राजकुमार की खोज में राजा प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग में लाता है, इसी प्रकार किंचित् मात्र भी विलंब न कर हमें अपने अभीष्ट की सिद्धि के हेतु शीघ्रता करनी ही सर्वथा उचित है। अतः पूर्ण लगन और उत्सुकतापूर्वक अपने ध्येय, आलस्य और निद्रा को त्याग कर हमें ईश्वर का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें पशुओं के स्तर पर ही अपने को समझना पड़ेगा।

**कैसे प्रवृत्त होना?**

अधिक सफलतापूर्वक और साक्षात्कार को सुलभ प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है - किसी योग्य संत या सद्‌गुरु के चरणों की शीतल छाया में आश्रय लेना, जिसे कि ईश्वर-साक्षात्कार हो चुका हो। जो लाभ धार्मिक व्याख्यानों के श्रवण करने और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन करने से प्राप्त नहीं हो सकता, वह इन उच्च आत्मज्ञानियों की संगति से सहज ही प्राप्त हो जाता है। जो प्रकाश हमें सूर्य से प्राप्त होता है, वैसा विश्व के समस्त तारे भी मिल जाएँ तो भी नहीं दे सकते। इसी प्रकार जिस आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि हमें सद्‌गुरु की कृपा से हो सकती है, वह ग्रन्थों और उपदेशों से किसी प्रकार संभव नहीं है। उनकी प्रत्येक गतिविधि, मृदु-भाषण, गुह्य उपदेश, क्षमाशीलता, स्थिरता, वैराग्य, दान और परोपकारिता, मानव शरीर का नियंत्रण, अहंकार-

शून्यता आदि गुण, जिस प्रकार भी वे इस पवित्र मंगल-विभूति द्वारा व्यवहार में आते हैं, सत्संग द्वारा भक्त लोगों को उसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इससे मस्तिष्क की जागृति तथा उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति होती है। श्री साईबाबा इसी प्रकार के एक संत या सद्गुरु थे। यद्यपि वे बाह्यरूप से एक फकीर का अभिनय करते थे, **परन्तु वे सदैव आत्मलीन रहते थे। वे समस्त प्राणियों से प्रेम करते और उनमें भगवत्-दर्शन का अनुभव करते थे।** सुखों का उनको कोई आकर्षण न था और न वे आपत्तियों से विचलित होते थे। उनके लिये अमीर और फकीर दोनों ही एक समान थे। जिनकी केवल कृपा से भिखारी भी राजा बन सकता था, वे शिरडी में द्वार-द्वार घूम कर भिक्षा उपार्जन किया करते थे। यह कार्य वे इस प्रकार करते थे-

## बाबा की भिक्षावृत्ति

शिरडीवासियों के भाग्य की कौन कल्पना कर सकता है कि जिनके द्वार पर परब्रह्म भिक्षुक के रूप में खड़े रहकर पुकार करते थे, ''ओ माई। एक रोटी का टुकड़ा मिले'' और उसे प्राप्त करने के लिये अपना हाथ फैलाते थे। एक हाथ में वे सदा 'टमरेल' लिये रहते तथा दूसरे में एक 'झोली'। कुछ घरों में तो वे प्रतिदिन ही जाते और किसी-किसी के द्वार पर केवल फेरी ही लगाते थे। वे साग, दूध या छाँछ आदि पदार्थ तो टिनपाट में लेते तथा भात व रोटी आदि अन्य सूखी वस्तुएँ झोली में डाल लेते थे। बाबा की जिह्वा को कोई स्वाद-रुचि न थी, क्योंकि उन्होंने उसे अपने वश में कर लिया था। इसलिये वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं के स्वाद की चिन्ता क्यों करते? जो कुछ भी भिक्षा मे उन्हें मिल जाता, उसे ही वे मिश्रित कर संतोषपूर्वक ग्रहण करते थे।

अमुक पदार्थ स्वादिष्ट है या नहीं, बाबा ने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया, मानो उनकी जिह्वा में स्वाद बोध ही न हो। वे केवल मध्याह्न तक ही भिक्षा-उपार्जन करते थे। यह कार्य बहुत अनियमित था। किसी दिन तो वे छोटी-सी फेरी ही लगाते तथा किसी दिन बारह बजे तक। वे एकत्रित भोजन एक कुण्डी में डाल देते, जहाँ कुत्ते,

बिल्लियाँ, कौवे आदि स्वतंत्रतापूर्वक भोजन करते थे। बाबा ने उन्हें कभी नहीं भगाया। एक स्त्री भी, जो मस्जिद में झाड़ू लगाया करती थी, रोटी के दस-बारह टुकड़े उठाकर अपने घर ले जाती थी, परंतु किसी ने कभी उसे नहीं रोका। जिन्होंने स्वप्न में भी बिल्लियों और कुत्तों को कभी दुत्कार कर नहीं भगाया, वे भला निस्सहाय गरीबों को रोटी के कुछ टुकड़ों को उठाने से क्यों कर रोकते? ऐसे महान् पुरुष का जीवन धन्य है। शिरडीवासी तो पहलेपहल उन्हें केवल एक 'पागल' ही समझते थे और वे शिरडी में इसी नाम से विख्यात भी हो गए थे। जो भिक्षा के कुछ टुकड़ों पर निर्वाह करता हो, भला उसका कोई आदर कैसे करता? परंतु ये तो उदार हृदय, त्यागी और धर्मात्मा थे। यद्यपि वे बाहर से चंचल और अशान्त प्रतीत होते थे, परन्तु अन्त:करण से दृढ़ और गंभीर थे। उनका मार्ग गहन तथा गूढ़ था। फिर भी ग्राम में कुछ ऐसे श्रद्धावान् और सौभाग्यशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने उन्हें पहचान कर एक महान् पुरुष माना। ऐसी ही एक घटना नीचे दी जाती है।

**बायजाबाई की सेवा**

तात्या कोते की माता, जिनका नाम बायजाबाई था, दोपहर के समय एक टोकरी में रोटी और भाजी लेकर जंगल को जाया करती थीं। वे जंगल में कोसों दूर जातीं और बाबा को ढूँढ़कर उनके चरण पकड़ती थीं। बाबा तो शान्त और ध्यानमग्न बैठे रहते थे। वे एक पत्तल बिछाकर उस पर सब प्रकार के व्यंजनादि जैसे-रोटी, साग आदि परोसतीं और बाबा से भोजन कर लेने के लिये आग्रह करतीं। उनकी सेवा तथा श्रद्धा की रीति बड़ी ही विलक्षण थी - प्रतिदिन दोपहर को जंगल में बाबा को ढूँढ़ना और भोजन के लिये आग्रह करना। उनकी इस सेवा और उपासना की स्मृति बाबा को अपने अन्तिम क्षणों तक बनी रही। उनकी सेवा का ध्यान कर बाबा ने उनके पुत्र को बहुत लाभ पहुँचाया। माँ और बेटे दोनों की ही फकीर पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने बाबा को सदैव ईश्वर के समान ही पूजा। बाबा उनसे कभी-कभी कहा करते थे कि ''फकीरी ही सच्ची अमीरी है। उसका कोई

अन्त नहीं। जिसे अमीरी के नाम से पुकारा जाता है, वह शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाली है।'' कुछ वर्षों के बाद बाबा ने जंगल में विचरना त्याग दिया। वे गाँव में ही रहने और मस्जिद में ही भोजन करने लगे। इस कारण बायजाबाई को भी उन्हें जंगल में ढूँढ़ने के कष्ट से छुटकारा मिल गया।

**तीनों का शयन-कक्ष**

वे सन्त पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में भगवान वासुदेव सदैव वास करते हैं। वे भक्त भी भाग्यशाली हैं, जिन्हें उनका सान्निध्य प्राप्त होता है। ऐसे ही दो भाग्यशाली भक्त थे (१) तात्या कोते पाटील और (२) भगत म्हालसापति। दोनों ने बाबा के सान्निध्य का सदैव पूर्ण लाभ उठाया। बाबा दोनों पर एक समान प्रेम रखते थे। ये तीनों महानुभाव मस्जिद में अपने सिर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की ओर करते और केन्द्र में एक दूसरे के पैर से पैर मिलाकर शयन किया करते थे। बिस्तर में लेटे-लेटे ही वे आधी रात तक प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप और इधर-उधर की चर्चाएँ किया करते थे। यदि किसी को भी निद्रा आने लगती तो दूसरा उसे जगा देता था। यदि तात्या खर्राटे लेने लगते तो बाबा शीघ्र ही उठकर उसे हिलाते और सिर पकड़ कर जोर से दबाते थे। यदि कहीं वह म्हालसापति हुए तो उन्हें भी अपनी ओर खींचते और पैरों पर धक्का देकर पीठ थपथपाते थे। इस प्रकार तात्या ने १४ वर्षों तक अपने माता-पिता को गृह ही पर छोड़कर बाबा के प्रेमवश मस्जिद में निवास किया। कैसे सुहाने दिन थे वे? उनकी क्या कभी विस्मृति हो सकती है? उस प्रेम का क्या कहना? बाबा की कृपा का मूल्य कैसे आँका जा सकता था? पिता की मृत्यु होने के पश्चात् तात्या पर घरबार की जिम्मेदारी आ पड़ी, इसलिये वे अपने घर जाकर रहने लगे।

**राहता निवासी खुशालचन्द**

शिरडी के गणपत तात्या कोते को बाबा बहुत ही चाहते थे। वे राहाता के मारवाड़ी सेठ श्री चन्द्रभान को भी बहुत प्यार करते थे। सेठजी का देहान्त होने के उपरांत बाबा उसके भतीजे खुशालचन्द

को भी अधिक प्रेम करते थे। वे उनके कल्याण की दिन रात फिक्र किया करते थे। कभी बैलगाड़ी में तो कभी ताँगे में वे अपने अंतरंग मित्रों के साथ राहाता को जाया करते थे। ग्रामवासी बाबा के गाँव के फाटक पर आते ही उनका अपूर्व स्वागत करते और उन्हें प्रणाम कर बड़ी धूमधाम से गाँव में ले जाते थे। खुशालचन्द बाबा को अपने घर ले जाते और कोमल आसन पर बिठाकर उत्तम सुस्वादु भोजन कराते और आनन्द तथा प्रसन्नचित्त से कुछ देर तक वार्त्तालाप किया करते थे। फिर बाबा सबको आनंदित कर और आशीर्वाद देकर शिरडी वापिस लौट आते थे।

एक ओर राहाता (दक्षिण में) तथा दूसरी ओर नीमगाँव (उत्तर में) था। इन दोनों ग्रामों के मध्य में शिरडी स्थित है। बाबा अपने जीवन काल में कभी भी इन सीमाओं के पार नहीं गए। उन्होंने कभी रेलगाड़ी नहीं देखी और न कभी उसमें प्रवास ही किया, परन्तु फिर भी उन्हें सब गाड़ियों के आवागमन का समय ठीक-ठीक ज्ञात रहता था। जो भक्तगण बाबा से लौटने की अनुमति माँगते और आदेशानुकूल चलते, वे कुशलपूर्वक घर पहुँच जाते थे। परन्तु इसके विपरीत जो अवज्ञा करते, उन्हें दुर्भाग्य व दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता था। इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं और अन्य विषयों का अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाएगा।

**विशेष**

इस अध्याय के नीचे दी हुई टिप्पणी बाबा के खुशालचन्द पर प्रेम के संबंध में है। किस प्रकार उन्होंने काकासाहेब दीक्षित को राहाता जाकर खुशालचन्द को लिवा लाने को कहा और उसी दोपहर को खुशालचन्द से स्वप्न में शिरडी आने को कहा, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि इसका वर्णन इस सच्चरित्र के ३०वें अध्याय में किया जाएगा।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु॥